RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17, अंक-2, मार्च अप्रैल मई 2024

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-17 अंक - 2 मार्च-अप्रैल-मई-2024

सम्पादक

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक

कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** – प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** – प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** – पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** – पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** – सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** – पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** – आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** – पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

महर्षि दयानन्द की राष्ट्रीय, सामाजिक, धार्मिक मान्यताओं की विवेचना

डॉ . रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

महर्षि दयानन्द क्रान्तदर्शी और अलौकिक प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने केवल आध्यात्मिक चिन्तक के रूप में ही नहीं, बल्कि मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने विचार और कार्य प्रस्तुत किए। मोक्ष की अभिलाषा त्यागकर उन्होंने सम्पूर्ण मानव जाति के सर्वांगीण विकास के लिए मनसा, वाचा और कर्मणा अथक प्रयास किया। इस कारण उनके व्यक्तित्व में आध्यात्मिक और राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का घनिष्ठ समन्वय दिखाई देता है। उनका चिन्तन किसी विशेष देश, धर्म या जाति तक सीमित नहीं था, बल्कि वे विश्व मानव थे, जो सम्पूर्ण मानवता के कल्याण और एकता के पक्षधर थे। उन्होंने सार्वजनिक जीवन में धर्म को लेकर कदम बढ़ाया और सत्य के प्रति पूर्ण निष्ठा रखते हुए अन्धविश्वास, मिथ्याचार और धार्मिक ढोंग का समूल नाश करने का व्रत धारण किया।

महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र की अस्मिता, अखण्डता और जातीय एकता की आवश्यकता पर विशेष बल दिया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि जब तक समाज में बल और एकता नहीं होगी, तब तक धर्म संस्कार, सामाजिक उन्नति और राष्ट्रोन्नति संभव नहीं है। उनका दृष्टिकोण यह था कि भारत की राजनीतिक परतन्त्रता का मुख्य कारण सामाजिक बिखराव और पतन है तथा सामाजिक अधोगति का मूल कारण वैदिक धर्म और संस्कृति से दूर होना है। अत: राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सामाजिक सुधार और सामाजिक सुधार के लिए वैदिक धर्म का पुनरुद्धार आवश्यक है।

महर्षि दयानन्द ने राज्य और राजनीति के विषय में वेद और प्राचीन भारतीय इतिहास का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए यह स्थापित किया कि धर्म के बिना राजनीति निरर्थक है। उन्होंने 'राज' और 'नीति' के स्थान पर 'धर्म' शब्द का प्रयोग किया और यह स्पष्ट किया कि धर्म का अर्थ किसी सम्प्रदाय या कर्मकाण्ड से नहीं, बल्कि अभ्युदय और नि:श्रेयस के मार्ग में मानव और राष्ट्रहित के लिए कार्य करना है। उनके राष्ट्रवादी विचारों का आधार मानवता और ईश्वर की सर्वव्याप्त सत्ता में विश्वास था। उनके लिए मानवता का सर्वोच्च धर्म राष्ट्रहित और परहित के लिए स्वहित का त्याग करना है।

दयानन्द आजीवन मानव जीवन को आर्यत्व प्रदान करने, आर्थिक शोषण, राजनीतिक दासता और सामाजिक एवं धार्मिक अन्धश्रद्धा समाप्त करने के उद्देश्य से मोक्ष मार्ग का त्याग कर मानव सेवा और समाज सेवा में जुटे रहे। उनका मानववाद उग्र व्यक्तिवादी नहीं था और उसमें स्वार्थवाद की कोई गन्ध नहीं थी। वास्तव में उनका मानववाद राष्ट्रवाद का सर्वोत्तम रूप था। महर्षि दयानन्द का जीवन और दृष्टिकोण यह संदेश देता है कि धर्म, समाज और राष्ट्र का समन्वय ही मानवता और राष्ट्र की असली उन्नति का आधार है।

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

सम्प्रभुता :- स्वामी दयानन्द ने मूलत: धर्म की सम्प्रभुता को स्वीकार किया, जिससे राजा और प्रजा दोनों अनुशासित और जिम्मेदार बनें। उन्होंने स्पष्ट किया कि शासन की श्रेष्ठता केवल राजा के अधिकार में निहित नहीं है, बल्कि इसमें प्रजा की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। राजा के निर्वाचन से लेकर सभासदों के चयन और राज्यकर्मियों की नियुक्ति तक दयानन्द ने प्रजा की सहमति और जनमत को अनिवार्य ठहराया। राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में जनता की राजनीतिक सहभागिता और विधिनिर्माण में जनमत-संग्रह की व्यवस्था द्वारा उन्होंने प्रजा को सर्वोच्च महत्व दिया। यहाँ तक कि किसान और सामान्य जन को 'राजाओं का राजा' कहकर उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि वास्तविक शक्ति और शासन की नींव प्रजा में ही निहित है। इस प्रकार उनके चिन्तन में जन सम्प्रभुता का सिद्धान्त स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

प्रजातंत्र :- प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिन्तन में, वैदिक युग से लेकर मनु, भीष्म और कौटिल्य जैसे राजशास्त्रज्ञों के कार्यों में सामान्यत: वंशानुगत राजतन्त्र को समर्थन मिला, परन्तु स्वामी दयानन्द ने इस दैवी सिद्धान्त और निरंकुश वंशानुगत शासन का कट्टर विरोध किया। उन्होंने गुण, कर्म और स्वभाव की श्रेष्ठता के आधार पर प्रजा द्वारा निर्वाचित और धर्मसिद्ध वैधानिक रूप से सीमित राजतन्त्र को मान्यता दी। राजा का पद निर्वाचित अध्यक्ष का पद है और वह केवल तीनों सभाओं की सहमति एवं स्वीकृति से ही कोई निर्णय लेने में सक्षम होता है। अपराध या दुराचरण की स्थिति में राजा और राजन्यवर्ग को प्रजा की तुलना में अधिक दण्ड का प्रावधान करते हुए दयानन्द ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि प्रजा के हित के विरुद्ध आचरण करने वाले राजा को प्रजा द्वारा पदच्युत किया जा सकता है।

यद्यपि बाह्य रूप से दयानन्द की राज्य-व्यवस्था राजतन्त्र प्रतीत होती है, परंतु स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था और विकेन्द्रित लोकतन्त्रवाद के सिद्धान्त पर इसका आधार स्पष्ट होता है। महात्मा गांधी से पूर्व ही दयानन्द ने स्थानीय स्तर पर राजनीतिक संस्थाओं को स्वायत्तता और स्वतन्त्रता प्रदान करने का प्रतिपादन किया। उल्लेखनीय है कि जहाँ महात्मा गांधी का सर्वोदय पाश्चात्य विचारकों जैसे जॉन रस्किन और टाल्स्टाय से प्रेरित था, वहीं दयानन्द का यह लोकतान्त्रिक और प्रजातान्त्रिक दृष्टिकोण पूर्णतया वेद, मनुस्मृति और अन्य आर्षग्रंथों पर आधारित शुद्ध भारतीय विचारधारा थी। उनके विचारों में धर्म, जनता और शासन का ऐसा संतुलन था, जो राजा और प्रजा दोनों को जिम्मेदार बनाता और समाज में वास्तविक लोकतन्त्र का आधार स्थापित करता था।

कल्याणकारी राज्य :- स्वामी दयानन्द ने राज्य और उसके उद्देश्यों को इतने व्यापक और उच्च दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया कि यह आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन में अद्वितीय है। अन्य किसी विचारक ने राज्य के कार्यक्षेत्र और उद्देश्य को उनके समान समग्र दृष्टि से नहीं देखा। आधुनिक लोककल्याणकारी राज्य अक्सर केवल भौतिक और सामाजिक उन्नति तक सीमित रहता है, जबकि दयानन्द के विचार में राज्य का कार्यक्षेत्र केवल प्रशासन या शासन तक सीमित नहीं है। उनके अनुसार राज्य का उद्देश्य प्रजा के व्यक्तिगत जीवन, शिक्षा, विवाह, रक्षा, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक लक्ष्यों को समेटता है। राजपद उनके लिए भोग या प्रतिष्ठा का साधन नहीं, बल्कि सेवा और त्याग का माध्यम है। राजन्य वर्ग प्रजा का सेवक होता है, स्वामी नहीं। उन्होंने राजा की दिनचर्या इस तरह निर्धारित की कि उसे निरंतर प्रजा के कल्याण में संलग्न रहना पड़े और भोग-विलास या अनावश्यक मनोरंजन के लिए समय न मिले।

विधि-शासन :- महर्षि दयानन्द ने विधि-शासन का सिद्धांत भी प्रतिपादित किया। उनके समय में कानून केवल राजा या शासकों की इच्छा का परिणाम होता था, पर दयानन्द ने यह स्पष्ट किया कि

शासन का आधार विधि होना चाहिए। विधि का निर्माण वेदादि शास्त्रों के अनुसार सभा और प्रजा की सहमति से होना चाहिए। शासन का अधिकार किसी व्यक्ति का नहीं, बल्कि विधि का होना चाहिए। विधि के समक्ष राजा और प्रजा समान हैं और इसका उल्लंघन करने वाले दंड का भागी होंगे।

दयानन्द की न्याय प्रणाली व्यावहारिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी उन्नत थी। उन्होंने नारी की स्वाभाविक लज्जा और संकोच का ध्यान रखते हुए यह व्यवस्था की कि महिलाओं के मामलों में साक्ष्य महिलाओं द्वारा ही ग्रहण किए जाएं। न्याय में गुण, पद, प्रतिष्ठा, शिक्षा और सामाजिक स्थिति के अनुसार दंड को अलग-अलग तरीके से निर्धारित किया गया। इस तरह उनकी न्याय व्यवस्था आज के समय के न्याय और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार को रोकने और समाज में समानता स्थापित करने के लिए अनुकरणीय है।

राष्ट्र सुरक्षा :- महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र की सुरक्षा और संरक्षण पर विशेष बल दिया। उन्होंने रणनीति, युद्ध-प्रशिक्षण, तोप और बन्दूक जैसे आग्नेयास्त्रों, प्रशिक्षित सेना और युद्ध में स्त्रियों की सहभागिता की आवश्यकता बताई। उनका दृष्टिकोण स्पष्ट था कि धर्म-युद्ध की अनुमति है, किन्तु छल और कूट-युद्ध नहीं। राजनय और विदेशनीति के संचालन के लिए उन्होंने निर्देशक तत्त्व भी बताए।

दयानन्द ने तत्कालीन भारतीय जनमानस को जागरूक किया और भारत के गौरवशाली अतीत की परम्पराओं को प्रस्तुत कर राष्ट्राभिमान और आत्मसम्मान का संचार किया। उन्होंने आधुनिक स्वतंत्र भारत की रूपरेखा चार स्तम्भों—स्वभाषा, स्वदेशी, स्वराज्य और स्वधर्म—पर आधारित प्रस्तुत की। उनका राष्ट्रवाद राजनीतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से समग्र था। उनके विचारों ने स्वतंत्रता संग्राम में स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा को संघर्ष का आधार बनाने में मार्गदर्शन दिया। दयानन्द ने आर्य भाषा, विशेषकर हिन्दी, को राष्ट्रीय एकता का महत्वपूर्ण आधार माना, जिस पर महात्मा गांधी भी प्रभावित हुए।

देशी शासक :- महर्षि दयानन्द का विश्वास था कि भारतीय स्वतंत्रता तभी सशक्त होगी जब स्वदेशी राजाओं का चारित्रिक उन्नयन होगा, क्योंकि राजा का स्वभाव और चरित्र सीधे प्रजा के स्वभाव और चरित्र को प्रभावित करता है। इसी विश्वास के आधार पर दयानन्द ने राजस्थान की महाराणा भूमि को अपनी कर्मभूमि बनाया और वहां के शासकों को राजधर्म के प्रति जागरूक किया, उन्हें दुर्व्यसनों से दूर रखा तथा उनमें स्वदेश-प्रेम की भावना जगाई। उनके पत्र-व्यवहार से स्पष्ट है कि उन्होंने उदयपुर के महाराणा सज्जन सिंह, शाहपुराधीश नाहर सिंह, जोधपुर के नरेश यशवन्त सिंह, बड़ौदा के दीवान टी. माधवराव और अन्य राजाओं तथा दरबार के प्रमुख सदस्यों को शासन, दिनचर्या पालन और नैतिक आचरण के लिए अनेक उपदेश और निर्देश दिए।

महर्षि दयानन्द ने भारतीय राष्ट्रीय अवधारणा को स्वदेशी और स्वभाषा के सिद्धांतों द्वारा गतिशील रूप दिया। उन्होंने 'वेदों की ओर लौट चलो' और 'आर्यावर्त आर्यों के लिए है' जैसे नारे देकर राजनीतिक स्वराज्य के आन्दोलन का मजबूत आधार प्रस्तुत किया। उनके विचारों से प्रेरित आर्य समाजियों ने स्वतंत्रता संग्राम में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इसी कारण रोमारोलाँ ने लिखा कि भारतीय राष्ट्रीय चेतना के पुनर्जागरण में सबसे प्रबल प्रेरणा दयानन्द से मिली। उन्होंने भारत के निष्प्राण शरीर में उत्साह, दृढ़ निश्चय और ऊर्जा भरकर उसे संजीवनी शक्ति प्रदान की। बिहार के राज्यपाल अनन्त शयनम् आयंगर ने भी कहा कि यदि महात्मा गांधी देश के राष्ट्रपिता हैं तो स्वामी दयानन्द राष्ट्र के पितामह हैं। इन्द्र विद्यावाचस्पति के अनुसार, 15 अगस्त 1947 को प्राप्त स्वतंत्रता का प्रारम्भ महर्षि दयानन्द ने किया और अंतिम आहुति महात्मा गांधी

ने दी। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि दयानन्द ने ही भारतीय स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि तैयार की और राष्ट्रीय जागरण की पहली दीप-शिवा प्रज्वलित की।

प्रेरणा स्रोत :- महर्षि दयानन्द भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के प्रेरणा स्रोत थे। कई नेताओं और क्रांतिकारियों पर उनके व्यक्तित्व और शिक्षाओं का गहरा प्रभाव पड़ा। श्याम जी कृष्ण वर्मा, स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपत राय और भगत सिंह जैसे कई देशभक्त आर्य समाज से देशभक्ति सीख चुके थे। महात्मा गांधी पर भी दयानन्द का प्रभाव रहा, क्योंकि उनके गुरु गोपाल कृष्ण गोखले और गोखले के गुरु न्यायमूर्ति गोविन्द रानाडे दयानन्द के शिष्य थे।

इतिहासकार जदुनाथ सरकार के अनुसार, भारत के उत्थान के इतिहास में दयानन्द को उच्च स्थान मिलेगा। बैलंटाइन शिरोल ने कहा कि जहाँ-जहाँ आर्य समाज का प्रभाव है, वहाँ स्वतंत्रता और राजद्रोह प्रबल है। सत्याग्रह में जेल जाने वाले अधिकांश लोग आर्य समाज के ही थे। लाला लाजपत राय ने स्पष्ट कहा कि दयानन्द ने उन्हें उनकी आत्मा का दान दिया। इस प्रकार, महर्षि दयानन्द की राष्ट्रवादी विचारधारा ने स्वतंत्रता संग्राम और क्रांतिकारियों को प्रेरणा और शक्ति प्रदान की।

विश्व शान्ति के अग्रदूत :- महर्षि दयानन्द ने संकुचित राष्ट्रवाद की जगह अंतरराष्ट्रवाद और विश्व-नागरिकता की विचारधारा प्रस्तुत की। उन्होंने विश्व-संगठन, विश्व-प्रेम और सभी मानवों के प्रति समान व्यवहार का संदेश दिया। उनका दृष्टिकोण स्पष्ट था कि जैसा स्वदेश में मनुष्योन्नति के लिए कार्य करता हूँ, वैसा ही विदेशियों के साथ भी होना चाहिए। उन्होंने प्रदूषित और रूढ़िवादी यज्ञ-पद्धतियों के स्थान पर वैज्ञानिक अग्निहोत्र को व्यावहारिकता प्रदान की और मानवजाति को शुद्ध चिंतन एवं ज्ञान की ओर अग्रसर किया।

दयानन्द की राष्ट्रभक्ति में मिथ्या राष्ट्राभिमान नहीं था, बल्कि उसमें विश्वबंधुत्व का सिद्धांत निहित था। उनकी प्रतिपादित चक्रवर्ती राज्य की अवधारणा वास्तव में सार्वभौमिक विश्व-संगठन का प्रतीक है। वे सभी देशों की शांति, स्वतंत्रता और उन्नति के पक्षधर थे। उनके राजधर्म, वेद-स्वाध्याय, आर्य-भाषा (हिन्दी), स्वदेशी और स्वराज्य के विचार आज भी प्रासंगिक और उपादेय हैं।

धर्म और दयानन्द :- महर्षि दयानन्द ने धर्म का वास्तविक स्वरूप प्रकट किया और उसे मूर्ति पूजा, अंधविश्वास और आडम्बर से मुक्त किया। वे समस्त भारतीयों को एक धर्म (वैदिक), एकेश्वरवाद, एक भाषा (हिन्दी) और समान आचार-विचार अपनाने की शिक्षा देते थे, ताकि राष्ट्र की एकता, अखंडता और विकास सुनिश्चित हो। दयानन्द धर्म में विचार-स्वतंत्रता के पक्षधर थे और गुरुडम का पूर्ण विरोध करते थे। उनका मानना था कि धर्म में विवेक का समावेश होना आवश्यक है; अन्यथा वह धर्म नहीं, बल्कि धर्माध्यास है।

वे त्रैतवाद के समर्थक होते हुए भी एकेश्वरवादी थे और केवल ईश्वर को उपास्य मानते थे। महर्षि ने वैदिक धर्म को वेदों की मजबूत नींव पर स्थापित किया और पाश्चात्य बहुदेववादी दृष्टिकोण का खंडन करते हुए एकेश्वरवाद की स्थापना की। उन्होंने वेदों के अध्ययन और अध्यापन का अधिकार सभी मानवों को दिया, जिसे रोमाँ रोलाँ ने युग-प्रवर्तक माना। दयानन्द ने वेद-मंत्रों की राष्ट्रपरक और वैज्ञानिक व्याख्या कर यह सिद्ध किया कि भारतीय धर्म विज्ञान-मय है और धर्म तथा विज्ञान विरोधी नहीं, बल्कि परस्पर पूरक हैं।

समाज सुधार :- महर्षि दयानन्द ने वैदिक धर्म और संस्कृति के पुनरुद्धार के साथ-साथ समाज सुधार में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे केवल सामाजिक कुरीतियों के आलोचक नहीं थे, बल्कि एक श्रेष्ठ

और आदर्श समाज की स्थापना के अग्रदूत थे। उन्होंने जातियों और उपजातियों के आधार पर विभाजित हिन्दू समाज को गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर पुनर्गठित करने की शिक्षा दी, जिससे किसी व्यक्ति का वर्ण जन्म से नहीं, बल्कि उसके गुण और कर्म से निर्धारित होता है।

आर्य समाज के तत्वावधान में महर्षि ने शूद्र या दलित कहे जाने वाले व्यक्तियों के लिए 'शुद्धि आन्दोलन' की शुरुआत की। इस योजना के माध्यम से उपेक्षित व्यक्तियों को वेदाध्ययन का अधिकार और आर्य कहलाने का अवसर मिला, जिससे समाज में समानता और न्याय की नींव मजबूत हुई।

अछूतोद्धार :- महर्षि दयानन्द ने छुआछूत के निवारण के लिए केवल उपदेश ही नहीं दिया, बल्कि अपने व्यक्तिगत जीवन में भी इसे अपनाया। एक बार अनूपशहर के उमेदा नाई द्वारा दिया गया भोजन उन्होंने इस कहकर ग्रहण किया कि 'यह रोटी गेहूँ की है, इसलिए इसे अवश्य ग्रहण करूंगा।' उनकी इसी दृष्टि से प्रभावित होकर महात्मा गांधी ने अस्पृश्यता उन्मूलन में दयानन्द के योगदान को 'मूल्यवान विरासत' माना। रोमाँ रोलाँ ने भी उनकी प्रशंसा करते हुए लिखा कि दयानन्द अस्पृश्यता के अन्याय को कभी सहन नहीं करते थे और अस्पृश्यों एवं पददलितों के अधिकारों के प्रबल समर्थक थे।

नारी शिक्षा :- महर्षि दयानन्द ने बाल, बहु, वृद्ध, अनमेल विवाह, सती-प्रथा, समुद्र-यात्रा निषेध जैसी सामाजिक कुरीतियों का प्रबल विरोध किया और लोगों में इनके प्रति अविश्वास जगाया। उन्होंने स्त्रियों और शूद्रों पर आरोपित प्रतिबंधों को तर्क और शास्त्र के आधार पर निराधार ठहराया और उन्हें वेदाधिकार प्रदान किया।

महर्षि दयानन्द का समाज सुधार का सबसे बड़ा योगदान नारी जाति को शिक्षा, सम्मान और पुरुषों के समान अधिकार एवं स्वतंत्रता देना है। उन्होंने नारी को प्रशासन, न्याय और युद्ध सहित जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के बराबर अधिकार दिए। उन्होंने नारी शक्ति को पुर्नसम्मानित किया और 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' की भारतीय संकल्पना की पुन: स्थापना की। उनके प्रयासों से ही भारत की नारी शक्ति स्वतंत्रता और विकास में सक्रिय हुई। दयानन्द की शिक्षाओं से प्रेरित होकर स्वर्गीय दीवान बहादुर हर विलास शारदा ने नारी सुरक्षा हेतु 'शारदा एक्ट' प्रस्तुत किया। समाज सुधार के क्षेत्र में दयानन्द अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती सुधारकों से अधिक प्रगतिशील और युग-धर्मानुकूल थे।

आर्ष शिक्षा पद्धति :- महर्षि दयानन्द ने समझा कि समाज को श्रेष्ठ बनाने के लिए शिक्षा का प्रचार अत्यावश्यक है और आर्य समाज के बिना आर्य राष्ट्र की कल्पना निरर्थक है। उन्होंने अंग्रेजों द्वारा स्थापित मैकॉले की शिक्षा प्रणाली की आलोचना की और वैदिक संस्कृति, संस्कार एवं संस्कृत साहित्य के पठन-पाठन पर बल दिया। अपने ग्रन्थों में उन्होंने पाठ योजना, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों का विस्तृत विवरण दिया।

स्वदेश भ्रमण के दौरान दयानन्द ने फर्रुखाबाद, मिर्जापुर, कासगंज, लखनऊ आदि में वैदिक पाठशालाएँ स्थापित कीं। उन्होंने यह व्यवस्था प्रस्तावित की कि पाँच से आठ वर्ष की आयु में बच्चों को विद्यालय भेजना अनिवार्य हो और नियम न मानने पर दंड हो।

महर्षि ने विद्यालयों में राजा-प्रजा, धनी-निर्धन, स्त्री-पुरुष और जाति-भेद के आधार पर भेदभाव की कड़ी आलोचना की। उनका मानना था कि सभी को समान शिक्षा, खान-पान और आसन मिले। उन्होंने शिक्षा को सामाजिक उत्कर्ष और वर्ण निर्धारण का आधार माना, ताकि गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार आचार्यों द्वारा योग्य व्यक्तियों का ही चयन हो।

पश्चिमी विज्ञान का समर्थन :- महर्षि दयानन्द ने वैदिक शिक्षा एवं संस्कृत साहित्य के प्रचार के साथ-साथ पश्चिमी विज्ञान और आधुनिक ज्ञान को भी स्वीकार किया। उनके उपदेशों और शिक्षाओं के फलस्वरूप भारत में गुरूकुल विद्यालय और डी.ए.वी. कॉलेज स्थापित हुए, जहाँ वैदिक अध्ययन के साथ-साथ पाश्चात्य विज्ञान, दर्शन और इतिहास की विधिवत् शिक्षा दी जाती है।

अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में दयानन्द का दृष्टिकोण राष्ट्र के उत्थान के लिए विशेष महत्वपूर्ण था। वे देश का धन अनुत्पादक कार्यों, मूर्तिपूजा और मंदिर निर्माण में खर्च करने के पक्ष में नहीं थे, बल्कि कला-कौशल, शिल्पोन्नति और रोजगार सृजन पर बल देते थे। उन्होंने धर्मपूर्वक धन-संग्रह, स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग और विदेशी वैज्ञानिक प्रशिक्षण के माध्यम से देश की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ करने की योजना बनाई।

कृषि के क्षेत्र में उन्होंने उन्नत बीज, उर्वरक, भूमि-परीक्षण, नहरों का निर्माण और वर्षा हेतु यज्ञ कराने जैसे उपाय सुझाए। गो-रक्षण, पशु हिंसा और मांस भक्षण की आलोचना कर उन्होंने कृषि और पशुपालन में सुधार के लिए जनमत-संग्रह अभियान भी चलाया। इस प्रकार दयानन्द ने नवजागरण काल में धर्म और धन दोनों के संतुलित महत्व को स्थापित किया और यह सिद्ध किया कि साधु-संन्यासी केवल अध्यात्म तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक और आर्थिक उत्थान में भी सक्रिय हो सकते हैं।

निष्कर्षत: महर्षि दयानन्द का जीवन राष्ट्र, समाज और मानवता के उत्थान के लिए समर्पित था। वे धर्म-सुधारक, राष्ट्रवादी, समाज-सुधारक और मानवतावादी विचारक थे। उन्होंने धर्म, संस्कृति, स्वदेशी, स्वभाषा और स्वराज्य पर आधारित राष्ट्रवाद प्रस्तुत किया और राजा-प्रजा की सहभागिता पर बल दिया। उनका राज्य का उद्देश्य प्रजा का सर्वांगीण कल्याण था, जिसमें शिक्षा, न्याय, रक्षा और आध्यात्मिक विकास शामिल थे। उन्होंने छुआछूत, सामाजिक भेदभाव, सती प्रथा और बाल-विवाह के खिलाफ संघर्ष किया और नारी शिक्षा व समान अधिकार सुनिश्चित किए। दयानन्द ने वैदिक शिक्षा के प्रचार के साथ पश्चिमी विज्ञान और आधुनिक ज्ञान का भी समर्थन किया। आर्थिक समृद्धि के लिए स्वदेशी वस्तुएँ, कृषि सुधार और वैज्ञानिक प्रशिक्षण पर बल दिया। उनका दृष्टिकोण धर्म, समाज और राष्ट्र के विकास में आज भी प्रासंगिक और मार्गदर्शक है।

ꕥꕥꕥ

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *सत्यार्थ प्रकाश, स्वामी दयानन्द सरस्वती; प्रथम प्रकाशन: 1875; स्टार प्रेस, बनारस*
2. *ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, स्वामी दयानन्द सरस्वती; हिन्दी अनुवाद/मूल संस्करण उपलब्ध*
3. *पञ्चमहायज्ञ विधि, स्वामी दयानन्द सरस्वती; 1874 एवं 1877*
4. *आर्य समाज का इतिहास, राजेन्द्र 'जिग्यसु'; हिन्दी, हार्डकवर संस्करण; आर्य साहित्य; 2023*
5. *ऋषि दयानन्द और आर्य समाज, डॉ. ज्वलंतकुमार शास्त्री; हार्डकवर संस्करण; आर्य साहित्य; 2016*
6. *श्रीमद् दयानन्द प्रकाश, स्वामी सत्यानन्द; हार्डकवर संस्करण; आर्य साहित्य; 2018*
7. *भारत का एक ऋषि, रोमाँ रोलाँ; हिन्दी अनुवाद; लोकभारती प्रकाशन; वर्ष उपलब्ध नहीं।*
8. *भारतीय राष्ट्रीय चेतना का पुनर्जागरण, रोमारोलाँ; हिन्दी अनुवाद; प्रकाशक: लोकभारती; 1930*